(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-27 मार्च-2017 अंक-3

मेडिटेशन है लाभदायक

हाल ही में अमेरिका की कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी द्वारा किए गए एक शोध के अनुसार मेडिटेशन करने से-न केवल दिमाग को राहत मिलती है; बल्कि यह शारीरिक थकान को कम कर, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाता है।

विशेषज्ञों का कहना है कि मेडिटेशन से ब्लड प्रेशर नियंत्रित रहता है। साथ ही; जोड़ों और मांसपेशियों के दर्द से राहत मिलती है।

विशेषज्ञों के अनुसार मेडिटेशन करने से इम्यून सिस्टम भी सही होता है। इसके अतिरिक्त यह टेंशन दूर करने, खुशी बढ़ाने तथा क्रिएटिविटी और सोचने समझने की शक्ति बढ़ाने में भी सहायक है। ❑

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

अपने भीतर उतरना ही, मैडिटेशन

✍ स्वामी श्री विश्वास

अपने ही भीतर उतरना है।

भीतर का वह जगत जहां असीम-आनंद है, शांति है और मस्ती है।

आज तक के जीवन में सदा बाहर के दोनों नेत्रों से ही काम लेते आए हैं।

परन्तु अब हमें भीतर की ओर उतरना है।

अपने ही अंतस में उतरकर, स्वयं की खोज (तलाश) में उतर जाना है।

मैडिटेशन वह बेशकीमती सम्पदा है; जिसे हम जन्म से ही अपने साथ लेकर आए हैं। परन्तु जन्म के पश्चात जगत में आते ही, यह परमधन बाहर की ओर बहने लगा; और भीतर के जगत में अन्धेरा छा गया। मैडिटेशन; जागे पुरुषों के भीतर से निकली हुई वह दुआ (प्रार्थना) है; जो बिना किसी औषधि के जीवन को स्वस्थ बनाती चली जाती है।

अंतस का ध्यान : मैडिटेशन-यह कोई हठयोग, क्रियाकांड या योग नहीं; यह तो हमारा स्वभाव है। इसलिए इसमें उतरना कोई कृत्य नहीं; यह सहजतम है। मैडिटेशन की सहज क्रिया में उतरकर, जब इंसान अपनी दोनों पलकों को मूंदकर भीतर की ओर जोड़ता है - तो ऊर्जा का 80 प्रतिशत प्रवाह बाहर से हटकर भीतर की ओर अपने स्त्रोत से जुड़ने लगता है। ऊर्जा अपने स्त्रोत से जुड़कर शुद्धतम रूप ले लेती है और अंग प्रत्यंक पर उतरकर ही सबको स्वस्थ करती चली जाती है।

इसलिए मैडिटेशन ही जीवन की परिपूर्णता है।

यह हमारे मनस तल, बौद्धिक तल व शारीरिक तल—तीनों पर क्यों अपना प्रभाव जमाती हुई जीवन को सुखमय, प्रेममय और आनंदमय बनाती चली जाती है? यह बौद्धिक तल पर उतरती है - तो तीव्र बनाती है। मनस तल पर उतरती है—तो शांत बनाती है; और शारीरिक तल पर उतरती है—तो स्वस्थ बनाती है। भीतर की यह गिज़ा (खुराक) और यह अनमोल दावत, जागे पुरुषों के द्वार पर दवा नहीं, भीतर की दुआ मिलती है। इसमें उतरते ही इंसान स्वयं ही परम स्वास्थ्य का मालिक हो जाता है।

तनावग्रस्त जीवन में मैडिटेशन

आज की इस दौड़ धूप एवं आपाधापी के जीवन में हर इंसान टैन्शन (Tension), सट्रैस (Stress) से ग्रसित है; क्योंकि ध्यान की महान रोशनी, जिसके प्रकाश में यह मन कर्म करता है; वह सारी बाहर की ओर ही प्रवाहित होती चली जा रही है। इसलिए इतने बड़े बड़े शिखरों को पाकर भी भीतर अंधेरा है और भीतर सब खाली है।

जीवन में मैडिटेशन की महत्ता

जीवन में एक बात अच्छी तरह से समझ लेना कि; जीवन की आभा भीतर से जन्म लेती है। भीतर के पहलू के विकास के साथ साथ बाहर का पहलू स्वत: ही विकसित होता चला जाता है।

इसलिए ऐ इंसान ! अपने भीतर उतरकर, स्वयं की ओर बढ़ते चले जाना। मैडिटेशन की इस गिज़ा को जीवन का अंग बना लेना। अपनी सुरति को अपने ऊपर उडेलकर अपना कल्याण कर लेना अत: कृत्कृत्य हो जाओगे।❑

अन्त:करण की शुद्धि

- श्रीमती गुंजन गोयल (मो० 098962-69674)

बाहर की सफाई से ज्यादा जरूरी है भीतर की सफाई

हर रोज नहाते हैं, साफ सुथरे कपड़े पहनते हैं-ताकि हम स्वच्छ रहें। हममें कोई गंदगी न रहे। परन्तु अगर हम किसी पात्र को साफ करना चाहते हैं और बाहर से उसको बार बार धोते रहें; परन्तु अन्दर से साफ न करें—

तो क्या वह पात्र कभी साफ होगा?

एक सोने का पात्र है-हीरों से जड़ा। बाहर से देखने पर वह पात्र चमकदार और अद्भुत प्रतीत हो रहा है। परन्तु उस पात्र की भीतर से वर्षों से किसी ने सफाई नहीं की। उसके अन्दर धूल मिट्टी बढ़ती चली गई। अगर उस पात्र में बेहद स्वादिष्ट खीर डालें; तो क्या वो खीर खाने योग्य होगी?

चाहे पात्र सोने का हो; या मिट्टी का?

अगर वो बाहर के साथ साथ; भीतर से साफ नहीं है-तो वह पात्र उपयोग के योग्य

कदापि नहीं है। इसी प्रकार बाहर से तो हम खुद को चमकाते रहे और भीतर राग, द्वेष, वैर की भावना भरती चली गई। हमारे मन में सैंकड़ों विचार चलते हैं और अगर बाहरी सफाई के साथ साथ भीतर से इन विचारों की गंदगी को बाहर नहीं करेंगे-तो ये विचार हमें नष्ट करते चले जाएंगे।

प्रतिदिन जिस प्रकार बाहर की सफाई करना जरूरी है-उसी प्रकार भीतर की सफाई करना तो उससे भी ज्यादा जरूरी है।

भीतर ध्यान में उतरने से जितने भी अनावश्यक विचार हैं-वो खाली होते चले जाएंगे और हम बाहर भीतर; हर तरफ से स्वच्छ, शुद्ध हो जाएंगे। संत कबीर फर्माते हैं-

यह मन नीचा मूल है, नीचा करम सुहाय।
अमृत छाड़ै मान करि, विषहि प्रीत करि खाय॥

यह मन बहुत ही नीच है और इसे नीच कर्म;
मोह माया और वासना ही सुहाते हैं।
किन्तु जब मान सम्मान करके इसे ध्यान अमृत रूपी ज्ञान से भर दिया जाय;
तब यह मन विषय विकारों को छोड़ देता है।
अर्थात् मन को ध्यान रूपी अमृत से ही पवित्र किया जा सकता है;
अन्यथा यह विकारों से ही ग्रस्त रहेगा। ❑

मौन की साधना

✍ डॉ० मुमुक्षु दीक्षित

आमतौर पर वाणी को विराम देना मौन कहलाता है।
किंतु 'मौन' का वास्तविक अर्थ मात्र चुप रहना ही नहीं,
बल्कि उससे कहीं अधिक व्यापक है।

वास्तव में मौन समस्त इंद्रियों को बाह्य जगत से हटाकर अंतस की ओर केंद्रित करना है। 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

गोपनीय रखने योग्य भावों में मौन मैं हूं।

मौन सतत प्रक्रिया है, जो आपके चुप रहने से आरंभ होकर

गहन सत्य की खोज तक अनवरत चलती रहती है।

मौन हमें अंतर्मुखी बनाता है। अंतर्मुखी व्यक्ति ही जीवात्मा और परमात्मा के गूढ़ रहस्य को भली भांति समझते हुए ईश्वर का साक्षात्मकार कर पाता है। इसलिए अध्यात्म पथ के पथिकों के लिए मौन की साधना का उपयोगी अंग माना गया है।

मौन वह शून्यावस्था है जहां व्यक्ति अंतर्मुखी होकर

अनंत की वाणी और जीवात्मा की पुकार को सुन सकता है।

सृष्टि में संपूर्ण जड़ जगत तो मौन का ज्वलंत उदाहरण है ही, यहां रहने वाले जीव जंतु और पशु पक्षी भी उतना ही बोलते हैं-जितना आवश्यक है।

उनका मौन प्राकृतिक है।

मौन की शक्ति अपार है।

अव्यक्त होकर भी मौन की भाषा अभिव्यक्त हो जाती है।

महान कवि विलियम वड्र्सवर्थ प्रकृति के अनन्य उपासक थे।

उन्होंने अपने काव्य को मौन और नीरवता का वरदान कहा है।

महर्षि रमण प्राय: मौन रहा करते

और उसी अवस्था में लोगों की जिज्ञासाओं का समाधान कर दिया करते थे।

मौन वाणी का तप है।

मौन से भीतरी राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों

का नाश होकर मनुष्य की वाणी सिद्ध व पवित्र होती है।

मौन साधना द्वारा व्यक्ति का आत्मबल और कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो मौन के वृक्ष पर सदैव शांति के ही फल लगते हैं। मौन का आश्रय लेकर व्यर्थ की कटुता, कलह और विवादों से बचाव के साथ ही मिथ्या वचन, अपशब्दों के प्रयोग, परनिंदा व अनर्गल बकवास जैसे वाणी के पापों से भी बचा जा सकता है। मौन व्यक्ति की अज्ञानता और मूर्खता पर आवरण डालने में भी सहायक है।

भर्तृहरि ने मौन को अज्ञानता का ढक्कन बताते हुए ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों के लिए मौन का सर्वोत्तम आभूषण और रक्षा कवच बताया है।

ध्यान रहे कि मुख से निकले शब्द कभी वापस नहीं लौटते। अत: सोच समझकर सीमित बोलने अथवा यथासंभव मौन धारण करने में ही भलाई है। ❑

(1936-2009)

प्राकृतिक धरोहर

✍ डॉ० शम्भूनाथ

समाज के एक साधारण मनुष्य के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हुई अनुभूतियों पर विश्वास करना आसान होता है; परन्तु दिव्य शक्तियों पर विश्वास करना कठिन होता है। फलत: दिव्य जगत से सम्बन्धित वार्तालाप में भी जन साधारण का रुचि लेना कठिन हो जाता है।

वनस्पति जगत का विस्तार भी अनन्त है।

एक जन साधारण को भी यह ज्ञान है कि वनस्पति जगत पृथ्वी के ऊपर है लेकिन इसे जन्म देने वाली शक्ति 'रस' (Sap) तो जमीन के नीचे है।

बिलकुल इसी प्रकार से पराजगत और इन्द्रिय जगत हैं।

इन्द्रिय जगत की समस्त अनुभूतियों का आधार, पराजगत में है।

यह एक जीवन सत्य है कि हम अपनी इन्द्रियों द्वारा इन्द्रिय जगत में भी न मालूम कितने 'प्राकृतिक धरोहर' की अनुभूतियां महसूस करते हैं; जैसे-जल, वायु, अग्नि, पहाड़, पृथ्वी, सूर्य और चन्द्र के प्रकाश में अनन्त तारे आदि। आज के समय में समाज में पेय जल की कमी, हर तरफ अनुभव हो रही है। स्वच्छ हवा की भी कमी अनुभव हो रही है। वर्षा, ठंडक, गर्मी, समाज की इच्छाओं के प्रतिकूल अनुभव हो रहे हैं। जब हमारे समाज में कोई सामाजिक व्यवस्था अनुकूल नहीं दिखायी पड़ती-तो हम उसके लिए अपने राजा को दोषी बताते हैं। इसी के आधार पर समझना आसान है कि कदाचित् सभी देशों के मनुष्यों के समाज में आज; 'प्राकृतिक धरोहर' की कमी का कारण प्राकृतिक व्यवस्था में कमी है।

लेखक यह कहना चाहता है कि हम पराकर्म के अभ्यास (Meditation) द्वारा इस प्राकृतिक व्यवस्था की कमी को दूर कर सकते हैं।

हमें 'प्राकृतिक धरोहर' को व्यवस्थापक बनाना है। ऐसी उच्च स्तर की अभिलाषाएं, मात्र पराकर्म जैसी उच्च स्तर के कर्मों द्वारा ही संभव हैं। 'प्राकृतिक धरोहर' की व्यवस्था हर समाज के मनुष्यों के अनुकूल हो-इसके लिए यह आवश्यक है कि हर समाज में पराकर्म करने वाले व्यक्ति, समय बीतने के साथ साथ बढ़ें और इस कर्म के क्षेत्र में अलग अलग स्तर की सिद्धियां प्राप्त करें।

स्थूल जगत मात्र सूक्ष्म जगत के कर्मों द्वारा व्यवस्थित हो सकता है।

आज के समाज के मनुष्य, अज्ञानतावश, मात्र स्थूल कर्मों द्वारा स्थूल जगत के 'प्राकृतिक धरोहर' की व्यवस्था समाज के अनुरूप करने में प्रयत्नशील हैं। यही कारण है कि एक भी समाज ऐसा नहीं मिलता-जहां हमें सफलता मिली हो। स्थूल जगत की 'प्राकृतिक धरोहर' की समाज में व्यवस्था, पराजगत की शक्तियों से जुड़ी हुई हैं।

बिना कर्म के कुछ भी संभव नहीं।

कर्म से कर्म क्षेत्र की जागृति होगी। इस जागृति में ही समस्त व्यवस्थाओं के हो जाने का ज्ञान है। हो जाने की बात इसलिए कही; क्योंकि पराक्षेत्र में 'करना' असंभव है। 'पराकर्म' भी मात्र होते हैं। हम केवल 'पराकर्म पर समर्पित' होने के लिए, इन्द्रिय जगत में अनुकूल परिस्थितियां बनाते हैं।

उदाहरण : निद्रा के लिए बिस्तर बिछाने की क्रिया करते हैं और होनी पर समर्पित हो जाने पर निद्रा आ जाती है। निद्रा बुलाने के लिए कोई क्रिया नहीं करते।

इसी प्रकार से पराकर्म (Meditation) **हो-इसके लिए अनुकूल वातावरण ढूंढ़ कर, सुविधाजनक आसन पर बैठकर 'होनी' पर समर्पित हो जाते हैं।**

ज्यों ज्यों लम्बे अभ्यास द्वारा पराकर्म की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त होंगे-त्यों त्यों समाज में सारे 'प्राकृतिक धरोहर' व्यवस्थित होने लगेंगे। समाज, मात्र एक मां बाप और उनके बच्चों का हो सकता है। एक कुटुम्ब का भी हो सकता है। बहुत से

कुटुम्बों द्वारा बना हुआ मोहल्ला हो सकता है। इसी तरह एक शहर का या एक प्रदेश का या एक देश का समाज हो सकता है। ज्यों ज्यों समाज की जनसंख्या बढ़े-त्यों त्यों 'प्राकृतिक धरोहर' के व्यवस्थापकों की संख्या बढ़ना अति आवश्यक है। और यही, कलयुग में नहीं होता। कदाचित् यह युग का प्रभाव होता है। हमारे पुराण बताते हैं कि हमारी पृथ्वी न मालूम कितने युगों के चक्र देख चुकी है

और हर 'कलयुग' में ऐसा ही होता है।

यद्यपि हर सतयुग में इसके विपरीत होता है।

समाज में शिक्षा हेतु विद्यालय मिलते हैं। इन विद्यालयों में मां बाप अपने बच्चों को शिक्षा हेतु भेजते हैं। जो मां बाप अपने बच्चों को विद्यालयों में भेजेगा-वह विद्यालय तक जाने का साधन, विद्यालय के अनुकूल विद्यार्थी के कपड़ों और विद्यालय के शुल्क आदि की व्यवस्था भी करेंगे। इसी प्रकार से

परमात्मा अपने बच्चों अर्थात् जीवात्माओं को शिक्षा हेतु पृथ्वीलोक में भेजता है और यही कारण है कि पृथ्वी पर मनुष्य की जितनी आवश्यकताएं संभव हैं, उन सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विविध 'प्राकृतिक धरोहर' की व्यवस्था अनन्त मात्रा में 'होनी की शक्ति' के माध्यम से कर दी।

परन्तु ऊपर हमने देखा कि आज के युग में ये व्यवस्थाएं भी पूर्ण रूप से व्यवस्थित नहीं दिखतीं। न दिखने का कारण सन्त तुलसीदास जी ने बताया–

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा।

जो जस करई, सो तस फल चाखा॥

ऊपर की पंक्ति का अर्थ है कि प्राकृतिक व्यवस्थाओं का व्यवस्थित रहना अथवा न रहना, मात्र कर्म पर निर्भर करेगा। सारे जीव, मात्र कर्म करने के लिए इस संसार में आए हैं। यह संसार द्वैत जगत कहलाता है। अत: कर्म क्षेत्र भी दो हैं: इन्द्रिय जगत और पराजगत। सारे जीव दोनों जगत में कर्म करने में असमर्थ होंगे, परन्तु मनुष्य सारे जीवों में सर्वश्रेष्ठ माना गया :

बड़े भाग मानुष तन पावा।

सुर दुर्लभ सदग्रंथहि गावा॥

प्रत्येक व्यक्ति दोनों कर्म क्षेत्र में कर्म करने योग्य है।

यह एक जीवन सत्य है और उपरोक्त पहली कहावत की दूसरी पंक्ति के अनुसार जिस समाज के अधिकतर मनुष्य जैसे कर्म करेंगे-उसी के अनुसार उस समाज के व्यक्ति, जीवन के सुख दु:ख का फल चखेंगे। यद्यपि किसी युग में मात्र कोई विशेष व्यक्ति, प्रकृति की इच्छाओं के अनुसार कर्म करके मात्र अपने को इतना उच्च कोटि का बना सकता है कि वह समाज के बाकी लोगों से भिन्न दिखाई पड़े। दर्शन यह है कि मनुष्य का जन्म दोनों कर्म भूमि; इन्द्रिय जगत और पराजगत के कर्म हेतु हुआ है। इन्द्रिय जगत में कर्म तो पशु भी करेगा, लेकिन

जो मनुष्य होकर मात्र इन्द्रिय जगत में काम करेगा और अपने द्वारा पराकर्म होने हेतु 'होनी पर समर्पित' (Meditation) 'होने की कला में निपुण' होने का कर्म नहीं करेगा; वह पशुओं से ऊपर मात्र बौद्धिक स्तर पर रहेगा-परन्तु मानसिक स्तर पर नहीं। जिस मनुष्य द्वारा दोनों कर्म भूमि में कर्म होंगे और जो धीरे धीरे पराक्षेत्र के कर्मों में सिद्ध होता चला जाएगा-उसका जीवन शारीरिक और मानसिक स्तर पर भी समय बीतने के साथ साथ उठता ही जाएगा।

बाहर के समाज में हम देखते हैं कि कुछ मां बाप अपने बच्चों की शिक्षा से बहुत प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि वे उच्च वर्ग की श्रेणी में माने जाते हैं। ऐसे बच्चों के मां बाप अपने बच्चों की सुविधा, अपनी शक्ति के अनुसार बढ़ाने में लगे रहते हैं। इसके विपरीत जो बच्चे शिक्षा के क्षेत्र में कमजोर रहते हैं-उनके मां बाप उनके साथ कुछ सख्ती करते हैं, जिससे वे शिक्षा में ज्यादा परिश्रम करें—बहुधा वे इन बच्चों की सुविधा बढ़ाने में भी अग्रसर नहीं होते। इसी प्रकार से

जो व्यक्ति जीवन में पराकर्मों के लिए समय नहीं निकालता, उनकी आवश्यकताएं पूरी होने हेतु 'प्राकृतिक धरोहर' उनके जीवन में अव्यवस्थित होने लगती है।

यह प्रकृति का नियम है; जो हर युग में एक जैसा रहता है और यदि समाज के अधिकतर व्यक्ति मात्र इन्द्रिय जगत के कर्मों द्वारा अपने जीवन को संवारने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं-तो ऐसे समाज में 'प्राकृतिक धरोहर' अव्यवस्थित होने लगती हैं। ऐसा ही हम आज के युग के हर देश के समाज में देखते हैं। कहीं स्वच्छ वायु की समस्या है, तो कहीं पेय जल की; तो कहीं पृथ्वी पर भूचाल आने की। हम देखते हैं कि मौसम में बदलाव भी जीवों के अनुकूल नहीं हो रहा है। फलस्वरूप बढ़ती हुई औषधियों और उपचारक के बावजूद, हर समाज में शारीरिक कष्ट बढ़ते ही दिखायी पड़ते हैं। मानसिक तनाव भी कई गुणा बढ़ गए। वायु, जल, पृथ्वी और मौसम आदि की तरह, हमारे शरीर और मन भी 'प्राकृतिक धरोहर' ही हैं।

आज के समाज में आध्यात्मिक शिक्षा का लोप हो चुका है।

आध्यात्मिक शिक्षा ही पराकर्मों की शिक्षा है।

गीता में इन पराकर्मों का दर्शन दर्शाया गया है :-

1. **योगस्थ: कुरु कर्माणि। (भ० गीता 2.48)**
2. **योग: कर्म सु कौशलम। (भ० गीता 2.50)**

पहली पंक्ति दर्शाती है कि 'योग में स्थित होकर' इन्द्रिय जगत के कर्म करें।

दूसरी पंक्ति दर्शाती है कि 'इन्द्रिय जगत के कर्मों की कुशलता' की शक्ति, मात्र योग में है।

यहां पर योग का अर्थ है—हमारे मन में परातत्व का पिरो जाना।

यह मात्र पराकर्मों द्वारा संभव है। हमारे पुराण हमें बताते हैं कि जिस युग में आध्यात्मिक शिक्षा का प्रचलन था-उस समय बच्चे अपने गुरुओं के साथ पच्चीस वर्ष की आयु तक रहकर, योग में स्थित होने में निपुण हो जाते थे। इसके पश्चात् वे गृहस्थ जीवन में आते थे। दूसरे शब्दों में उस युग का हर व्यक्ति श्री कृष्ण द्वारा दर्शाए जीवन सिद्धांत (गीता 2.48 व 2.50) के अनुसार ही गृहस्थ जीवन के कर्मों में प्रवेश करता था और 25 वर्ष तक गृहस्थ के जीवन में रहने के दौरान वह 'योग में स्थित' रहकर कर्म करने में सिद्ध होता ही चला जाता था।

फलस्वरूप जिस स्तर की सिद्धि होती थी-उसी अनुपात में गृहस्थ के कर्मक्षेत्र में प्रयास घटने लगते थे और संतुष्टि बढ़ने लगती थी।

पिछले दो हजार वर्षों में पृथ्वी के हर समाज में प्रयास केवल बढ़े हैं; घटे नहीं। आध्यात्मिक भाषा में प्रयास बढ़ने का अर्थ है-रज का बढ़ना। जीवन की सफलता का अर्थ है-रज कम होना। यदि जीवन मायावी (गलत फहमियों का) होगा-तो रज निश्चित रूप से बढ़ेगा। रज तो केवल तब घटेगा-जब जीवन सत् पर आधारित होगा; या यह कहें कि ज्ञान पर आधारित होगा। ।

अखंड ज्ञान में ही पूर्ण ज्ञान है।

अखण्डता तो सत् से जुड़ा हुआ है।

इस तरह से हम देखते हैं कि मात्र, पराकर्म के अभ्यास की कमी के कारण पराचेतना की कमी होती है और पराचेतना प्राप्त न होने के कारण ही जीवन अधिक से अधिक प्रयासपूर्ण और असंतोषी बन जाता है।

भ० गीता में श्री कृष्ण ने उपरोक्त जीवन दर्शन को धर्म के शब्दों में भी दर्शाया है। धर्म का प्रचलित अर्थ है-धारण करने योग्य कर्म।

ऊपर हम देख चुके हैं कि कर्म क्षेत्र दो हैं।

इन्द्रिय जगत और पराजगत।

इन्द्रि जगत स्थूल कर्मों का क्षेत्र है और पराजगत सूक्ष्म कर्मों का।

आज के वैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि शक्ति तो सूक्ष्म में है।

निर्जीव वस्तुओं के सूक्ष्मतम कण—अर्थात् परमाणु ही सर्वशक्तिशाली हैं, इसी प्रकार से यदि मात्र कर्म ही हमें सारी शक्ति प्रदान कर सकते हैं—तो बड़ी बड़ी शक्तियां तो सूक्ष्म कर्म से ही प्राप्त हो सकती हैं। साधारण मनुष्य को भी यह ज्ञान है कि सर्वश्रेष्ठ शक्तियां तो 'दिव्य जगत' को प्राप्त हैं-अर्थात् पराजगत को प्राप्त हैं। ये शक्तियां अनन्त देवी देवताओं के नाम से जानी जाती हैं और ये शक्तियां प्रत्येक मनुष्य के अन्दर हैं। इनको जगाने हेतु तरह तरह के जागरण सम्बन्धित कर्म समाज में बताए जाते हैं। लेखक का यह मत है कि इनके जागरण की ज्ञान सम्बन्धी चेतना-इनके क्षेत्र में कर्म द्वारा पैदा हो जाएगी। अत: पराकर्म के अभ्यास

(Meditation) से धीरे धीरे साधक पराक्षेत्र के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में कर्म करने में निपुण हो जाएगा और धीरे धीरे पराजगत की सारी शक्तियां जागृत हो जाएंगी। हर व्यक्ति के मन में हर क्षण—कोई न कोई अभिलाषा अवश्य रहती है; क्योंकि बिना अभिलाषा वाला व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

जिसमें जैसी अभिलाषा रहती है-उस अभिलाषा को पूर्ण करने वाली देवी के क्षेत्र में कर्म पहले होता है। प्रकृति का नियम है कि एक अभिलाषा को पूर्ण होते ही; मनुष्य में दूसरी अभिलाषा जागृत हो जाती है।

इस दूसरी अभिलाषा के आधार पर मन पराक्षेत्र में विचरण का क्षेत्र बदल देता है और धीरे धीरे लंबी साधना के बाद हम संत तुलसीदास की इस अनुभूति के नजदीक पहुंचने लगते हैं :-

जो इच्छा करिहौं मन माहिं।

हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहिं॥

गीता (2.40) में श्रीकृष्ण ने उपरोक्त कर्म के लिए लिखा है—

नेहाभि क्रमन्यशेस्ति, प्रत्यवायो न विधते।

स्वल्पमव्यस्य धर्मस्य भायते महतो भयात्॥

आरम्भ इसमें है अमिट, यह विघ्न बाधा से परे।

इस धर्म का पालन, तनिक भी सर्व संकट को हरे॥

उपरोक्त श्लोक का अर्थ है कि इस कर्म योग में—अर्थात् पराकर्म के योग में आरंभ का—अर्थात् बीज का नाश नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार खेत में बीज बोकर उसकी रक्षा न करने से वे बीज ही नष्ट हो जाते हैं, परन्तु पराकर्म के अभ्यास (Meditation) के पश्चात्, यदि मनुष्य किसी कारण से अभ्यास छोड़ भी देता है-तो भी वह पराकर्म करने का बीज डालकर ही अभ्यास छोड़ता है। इस बीज के कारण समय आने पर यह अभ्यास फिर से अवश्य आरंभ हो जाएगा। यह एक ऐसा कर्म है कि गलत तरीके से करने पर भी जीवन में कुछ उल्टा हो जाने का भय नहीं है। पराकर्म (ध्यान) इतना महत्वपूर्ण कर्म है कि यह

कर्म 'धारण करने योग्य कर्म' है। क्योंकि इस धर्म का बहुत थोड़ा सा भी साधन, जन्म मृत्यु रूपी महान भय से रक्षा कर लेता है। कलयुग में यह साधन सबसे अधिक सरल इसलिए कहा जाता है, क्योंकि कलयुग में मनुष्य के पास समय की कमी अत्याधिक है। उपरोक्त श्लोक कहता है कि थोड़ा सा भी साधन, अत्यन्त लाभदायक है। महर्षि महेश महान योगी के अनुसार मात्र 30-30 मिनट का तीन समय का अभ्यास भी मनुष्य के जीवन को बदल सकता है। प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षा लगभग 100 वर्ष की बतायी गई। लेकिन मात्र 16-17 वर्ष के अभ्यास (Meditation) में एक 7-8 साल का बालक योग में स्थित हो जाएगा, बताया गया है। योग की अन्तिम अवस्था पर पहुंचने वाला व्यक्ति तो क्षणों में परमात्मा की प्राप्ति करा देता है। लेकिन हमारे कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म, दु:ख देने लायक ही न रह जाएं-इसके लिए तो केवल योग में स्थित होकर स्थूल जगत के कर्मों में कर्मशील होना है।

सभी का 'मन' पराजगत में ही निवास करता है।

क्योंकि—न हम उसे देख सकते हैं, न छू सकते हैं। अत: उसका अपना जगत—तो पराजगत ही है। पराजगत, मात्र पराकर्म के माध्यम से ही शक्तिशाली बनेगा। ज्यों ज्यों किसी भी व्यक्ति का पराक्षेत्र शक्तिशाली होगा-त्यों त्यों स्वयं 'मन' शक्तिशाली होगा। उसे पराक्षेत्र की सारी शक्तियां उपलब्ध होंगी।

स्वधर्म तो वह कर्म हैं, जिन कर्मों के माध्यम से मनुष्य—अपने को जान सके, अपने को पहचान सके कि; स्वयं वही ब्रह्म है।

इन्द्रिय जगत तो 'मन' के लिए बाहर का क्षेत्र बताया गया है। इसलिए स्थूल कर्मों के माध्यम से—जिन धर्मों का पालन होता है, जैसे-जाति धर्म, पितृ धर्म, मातृ धर्म, पुत्र धर्म, मित्र धर्म आदि; ये सारे धर्म 'पर धर्म' हैं और ये स्वधर्म नहीं कहे जा सकते। गीता (3.35) में श्रीकृष्ण ने स्वधर्म के लिए लिखा है।

श्रीयान् स्वधर्मों विगुण:, पर धर्मात्स्वनुष्ठितात।
स्वधर्मे निधनय श्रेय:, पर धर्मों भयावह: ॥

ऊंचे सुलभ पर धर्म से निज विगुण धर्म महान है।
पर धर्म भयप्रद, मृत्यु भी निज धर्म में कल्याण है॥

उपरोक्त श्लोक का अर्थ है कि अच्छी प्रकार आचरण किये हुए 'पर धर्म' से अर्थात्; वे धर्म जो मात्र कर्मेन्द्रियों की मदद से किये जाते हैं-अपना गुणरहित धर्म अति उत्तम है। स्वधर्म से संबंधित कर्म 'गुणों से परे जगत' में होते हैं। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है। कल्याण, मात्र आत्मोत्थान में है, जो मात्र गुणों से परे कर्मों द्वारा सम्भव है। यदि मृत्यु के पश्चात् श्रेष्ठ होकर मनुष्य, जन्मता हैं-तो मृत्यु भी शुभ है और दूसरे का धर्म (इन्द्रिय जगत के कर्मों का धर्म), मात्र भय देने वाला है। ❑

भाग्यशाली बनो

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

भाग्यशाली वे लोग होते हैं-जिनको मंजिल ठीक मिलती है;
और उससे भी भाग्यशाली वे होते हैं-जिनको राहें ठीक मिलती हैं।
राह ठीक मिल जाए-तो मंजिल दूर नहीं।

मैं भी अपने को एक भाग्यशाली मानती हूं; क्योंकि मुझे भी राह बहुत अच्छी, सच्ची और अनमोल मिली है। अब लगता है-मंजिल दूर नहीं; क्योंकि जिन सन्तों से मैं मिली हूं, वो सब अनुभव के अनमोल खजाने पा चुके हैं। सिर्फ पाए ही नहीं; बल्कि लुटा भी रहे हैं। अब हमारी बारी है कि हम उनको कितना लूटते हैं और कितना संभालते हैं? उनके कहे वचनों पर कितना चल कर अपने अनुभव को बढ़ाते हैं?

18 दिसम्बर, 2016 को हमारा एक दिन का शिविर लगा।

उसमें हमारे साधक भाईयों ने कितनी सरल भाषा में अपने वचन करे; जो मेरे को लगता है कि हर लेवल के व्यक्ति को आसानी से समझ आ जाएंगे और; आभी गए होंगे।

उनका एक एक शब्द इतना अनमोल था।

समझ आने का मतलब यह है कि हम उनके कहे के मुताबिक अपना अभ्यास करें और अपने जीवन को भी अनमोल बनाएं-तब तो हमारा दिन भर वहां रहने और सुनने का फायदा है।

प्रवीण जी ने कितनी सरल भाषा में हमें बताया कि

हर व्यक्ति शरीर, मन और बुद्धि लेकर आता है।

शरीर को भी कुछ तरीके अपना कर ठीक रख लेता है।

बुद्धि के लिए भी कुछ न कुछ करके ठीक कर लेता है।

रही मन की बात; वो जो ताकत लेकर भी आता है,

जो शक्ति मन में होती भी है-उसकी तरफ ध्यान न देकर, उसको भी खत्म कर लेता है। जबकि मन का ही विशेष ध्यान रखना होता है। अगर मन की शक्ति ठीक रहती है-तो बाकी शक्तियां अपने आप ठीक रहती हैं। मन को ठीक रखने के लिए उन्होंने 'ध्यान' का रास्ता बताया-जो बड़ा ही सरल है। जिसका नाम उन्होंने 'सहज ध्यान' दिया। उसमें करना भी कुछ नहीं। बस; बैठकर एक बार राम का नाम लेकर आराम (Relax) ही करना है। बाकी काम राम ने करना है।

बताओ क्या इतना सरल रास्ता और कहीं भी;

अपने जीवन को अनमोल बनाने का मिल सकता है?

मैंने एक कहानी भी सुनी - एक बार एक साधक, सन्त के पास गया-अपने जीवन को अनमोल बनाने का रास्ता पूछा। संत एक नग दिया। कहा-इसकी कीमत जान कर आओ। साधक, गया किसी फल विक्रेता के पास। उसने कहा 12 सेब ले जाओ। आगे गया जोहरी के पास। उसने कहा 50 लाख ले लो। आगे गया एक ऊंची कमाई करे इंसान के पास। उसने नग को एक साफ सुन्दर कपड़े पर रखा, पूजा करी, माथा टेका ओर कहा कि इसके बदले सारी दुनियां भी मिले-तो भी यह कम है। वह साधक सन्त के पास गया और बताया कि इसकी यह यह कीमत लगाई गई है। सन्त ने कहा, अब तुम समझ गए होंगे—यह नग कितना अनमोल है?

अपना यह जो मानव जीवन है-उस नग की तरह ही अनमोल है।

यह हमारी समझ पर निर्भर करता है कि इसे हमने कुछ सेबों में—या पैसों में लगाना है—या 'ध्यान' करके अनमोल बनाना है। भाई! आप सबको तरीका बता दिया। अब आप पर निर्भर करता है कि; आप क्या करें? पर मेरी मानों—तो आज

से नहीं; अभी से शुरू हो जाओ। दिन में तीन बार आंख बन्द करके चुपचाप 30 मिनट; एक बार राम का नाम लेकर बैठो और फिर अपने काम करो।

40 दिन तक तुम करो। बीच में छोड़ना मत।

फिर राम जी तुम्हारा हाथ पकड़ लेंगे। लो हो गया आपका जीवन भी अनमोल। दुनियां में आना भी हो गया सफल। तुम्हारा तो जीवन में कल्याण होगा ही; जो तुम्हारे सम्पर्क में आएगा- उसका भी। किसी शायर ने क्या सुन्दर लिखा है-

बिखरा पड़ा है मेरे ही घर में तेरा वजूद;
बेकार महफिलों में तूझे ढूंढ़ता था॥

दिव्य शक्ति लाती है; चेतना

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

परमात्मा की शक्ति से सोते समय सुख मिलने को निद्रा कहते हैं और जागते समय आनन्द मिलने को 'ध्यान योग' कहते हैं। सोते समय आराम (Relax) मिलने पर जो संस्कार, विचार के रूप में निकलते हैं-उसे स्वप्न कहते हैं। जागते समय आराम मिलने पर जो विचार निकलते हैं-उन्हें संस्कारों का उभार कहते हैं। किसी भी क्षेत्र का ज्ञान, केवल जागृत अवस्था में ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए भगवान के क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जागृत अवस्था में आंख मींचकर बैठना होता है। बाहर के क्षेत्र; जैसे-पढ़ाई, व्यापार, नौकरी, खेल आदि का ज्ञान प्राप्त करना हो—तो जागृत अवस्था में उस क्षेत्र में मन का विचरण होता है।

गहरी निद्रा में 'मैं' और 'मेरा' नहीं रहता और; तब 'परमात्म की शक्ति' से मिलन होता है। उसमें शरीर चार्ज हो जाता है। 'उसमें' से थकावट मिट जाती है; स्फूर्ति आ जाती है। लेकिन माया के प्रभाव से मुक्ति नहीं प्राप्त होती; क्योंकि भगवान का ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

किसी भी ज्ञान को जागृत अवस्था में ही प्राप्त किया जा सकता है।
जब जागृत अवस्था में मन को छुट्टा छोड़कर बैठते हैं-
तब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है।

जिस मात्रा में भगवान के क्षेत्र में मन के गोते लगाने से, भगवान का ज्ञान प्राप्त होता है-उसी अनुपात में माया के प्रभाव से मुक्ति मिल जाती है। उतना ही हमारा 'मैं' और 'मेरा' कटता जाता है-अर्थात् उतना ही जीवन का माया से ग्रसित होना कम हो जाता है। परिणामस्वरूप; उतना ही जीवन प्रयासरहित और हरा भरा होता जायेगा।

'ध्यान योग'; अन्दर समाये हुए प्रत्येक प्रकार के विकारों को निकालता है, जैसे-शरीर में मल, मन में आसक्ति, बुद्धि से भय और अंधकार; तथा अहं से मिथ्या 'अपनत्व' निकालता है। इसमें मन और बुद्धि निर्मल होने के साथ साथ शरीर भी निरोगी बनता है-जिससे शरीर में कोई रोग; टिक ही नहीं सकता।

ध्यान पर बैठने से मन में समाये हुए संस्कार कटते जाते हैं और मन मजबूत हो जाने के कारण, नये संस्कारों का बनना भी कम हो जाता है। मन शुद्ध हो जाता है; अर्थात् 'मन' परमात्मा की शक्ति के नजदीक हो जाता है। जितना नजदीक होता है- उतना ही उस व्यक्ति का जीवन सुखमय हो जाता है।

हमें विचार करना चाहिए कि हम अपने मन की शुद्धि के लिए; दैनिक जीवन में क्या करते हैं? अधिकतर देखने में यह आता है कि व्यक्ति, शरीर और बुद्धि की शुद्धि में तो समय लगाता है; लेकिन मन की शुद्धि के लिए, कुछ भी नहीं करता। अत: प्रत्येक व्यक्ति को मन में समाये हुए संस्कारों को निकालने में समय देना चाहिए, ताकि उसका अन्त:करण शुद्ध हो जावे और उसका जीवन प्रत्येक प्रकार से सुखमय (किसी भी क्रिया के प्रभाव से मुक्त) हो सके।

हमें ध्यान पर बैठते समय विचार निकलते तो दिखते हैं, लेकिन 'भगवान की शक्ति से मिलन' प्रतीत नहीं होता। वास्तव में मन हमेशा सुख में लगता है। जब मन इस प्रकार बैठने में लगता है-इसका तात्पर्य यह है कि मन को अन्दर के क्षेत्र में सुख की अनुभूति हो रही है। धीरे धीरे वह सुख की अनुभूति बढ़ती जाती है। वह अनुभूति ही; परमात्मा की शक्ति का मिलन है-अर्थात् परमात्मा की शक्ति का उभार है। यही 'ध्यान योग' है। मन संस्कार रहित होता जाता है और धीरे धीरे मन निर्मलता की ओर बढ़ता जाता है-अर्थात् परमात्मा की शक्ति के नजदीक बढ़ता जाता है।

'ध्यान योग' से; संसार के कार्य को सुचारू रूप से करने की असीम शक्ति प्राप्त होती है-जिससे सही विधि से 'ध्यान योग' में लगे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में, सफलता उसके चरण चूमती है।

राम अथवा भगवान (प्रभु) का तात्पर्य आत्मिक शक्ति से है।

जो व्यक्ति इस आत्मिक शक्ति को जितना उभार लेगा; उसके जीवन में उतनी ही भगवान की शक्ति प्रकट हो जायेगी। उसका जीवन उतना ही सुखमय हो जायेगा। जिस अनुपात में प्रभु की शक्ति उभर आती है-उसी अनुपात में उभरा हुआ सत्; मन पर पड़े हुए तम और रज को काटता है-जिससे व्यक्ति की मनोवृत्ति शुद्ध होती चली जाती है। साथ ही साथ, वह उभरा हुआ सत्; उस व्यक्ति के अन्दर और बाहर के वातावरण में फैले तम और रज को काटता है-जिससे उसके चारों ओर का वातावरण धीरे धीरे सत् में बदलता जाता है। जिससे उसके पारिवारिक जीवन एवं सामाजिक जीवन में समन्वय सौहार्द्र पूर्ण एवं प्रेम पूर्ण वातावरण होता जाता है। यह सत्; उसके जीवन को प्रत्येक प्रकार से अन्दर एवं बाहर, सब तरफ से सुखी बनाता है।

भगवान स्वयं चाहता है कि उसकी शक्ति अन्दर से बाहर आवे।

यह कार्य निष्काम कर्म के माध्यम से मनुष्य योनि ही कर सकती है।

निष्काम कर्म का अर्थ है-उत्तेजनारहित विचार

जिसे हम मन का भागना (स्मर्पण) कहते है।

जिस समय हम ध्यान पर बैठते हैं-उस समय निकलते हुए संस्कारों की वजह से अन्दर भरी हुई उ त्तेजनाएं भी निकल जाती हैं। जो विचार मन में आते हैं-उनमें उत्तेजनाएं भी निकल जाती हैं। जिस अनुपात में विचारों में उत्तेजना कम हो जाती है-उसी अनुपात में अन्दर की ईश्वरीय शक्ति उभर जाती है।

गीता में साफ साफ लिखा है कि

ईश्वरीय शक्ति, उत्तेजनारहित विचारों के माध्यम से ही उभरती है।

इसलिए विचारों से छुटकारा पाने की बात ही, गलत हो जाती है। इस प्रक्रिया से अन्दर का सत् बाहर निकलकर; अन्दर और बाहर फैले हुए तम और रज को

काटता है। यदि मनुष्य, भगवान के इस कार्य में सहयोग प्रदान नहीं करते-तब भगवान को संसार में फैले हुए तम और रज को काटने हेतु, प्राकृतिक प्रकोप द्वारा संहार करना पड़ता है, जिसको भगवान की 'विनाश लीला' कहते हैं। इस प्रकार भगवान का यह कार्य; अन्दर से सत् को बाहर की ओर उभारना-जो कि 'ध्यान योग' द्वारा होता है, अन्य सभी कार्यों की तुलना में हजारों, लाखों गुणा सफल होता है। ❑

ध्यान द्वारा जीवन में सफलता

—श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

जीवन में अनेक समस्याएं अलग अलग पहलुओं में होती हैं। अगर अलग अलग समस्याओं को सुलझाने लगेंगे—तो सारा जीवन ही निकल जाएगा। परेशानी आप के जीवन में बुढ़ापे के दौर में बढ़ती ही जाएगी। आज समाज में बुजुर्गों का क्या हाल हो रहा है? इस स्थिति से सभी वाकिफ हैं। आतंकवाद ने इतनी गहरी जड़ें फैला ली हैं, कि यह समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहा है। समाज में रजोगुण व तमोगुण की अधिकता होने के कारण, यह सामन्जस्य समाप्त होता जा रहा है। अगर आप के पास आत्मशक्ति होगी—तो आप जिस को जो समझाएंगे; वही उस की समझ में आ जाएगा। आत्मशक्ति को ध्यान के द्वारा, मन में पिरो दिया जाए। चाहे देश का राजा हो या साधारण व्यक्ति, वह जो कहेगा—उस का प्रभाव, सामने वालों पर पड़ेगा। महात्मा गांधी, विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण, विवेकानन्द आदि, आज के युग में भी अनेक राजनीतिज्ञ हुए, जिन्होंने आत्मशक्ति, ध्यान के द्वारा मन में पिरोकर, समाज को जो दिशा देनी चाही—उसी दिशा में समाज को मोड़ दिया। ध्यान, जीवन में ऐसा साधन है, जो मनुष्य का सभी प्रकार से कल्याण करते हुए, मनुष्य को उत्थान की तरफ ले जाता है। परमात्मा ने सभी मनुष्यों के अन्दर आत्म-तत्व दिया है, जो सभी समस्याओं का समाधान जानता है। जीवात्मा ईश्वर का अंश है—जो कि पूर्ण है, परन्तु बादल रूपी अज्ञानता से ढकी हुई है। ध्यान द्वारा जीवन के रहस्यों को खोलने से किसी को भी असन्तुष्टता नहीं होगी। इस में ब्रह्मनन्द आप की सहायता करेंगे।

मन की शक्ति

हमारा मन; ऋषि नारद के समान काम करता है। भगवान के क्षेत्र से आनन्द को

प्राप्त कर के संसार की सभी स्थूल, सूक्ष्म चीजों को शक्ति प्रदान करता है। सूर्य, चांद, सितारे, सभी देवी-देवता; मन द्वारा वातावरण में फैलाई शक्ति से अपना काम चलाते हैं। इस शक्ति द्वारा; प्रकृति का संतुलन बना रहता है। प्रकृति पर अधिकार जताने की कोशिश में अनिष्ट होने लगते हैं। हमें योगस्थ (श्रीमद् भगवद् गीता 2.48) होकर सारे काम करने चाहिए। सदा बदलने वाली बाहरी संसार की बजाए; कभी न बदलने वाले भगवान की शक्ति, अन्दर से प्राप्त करनी चाहिए। ध्यान के अभ्यास से गहरे विश्राम द्वारा हम जितनी चाहें; अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान के द्वारा हमें भगवान से नहीं; भगवान की ही चाहना करनी चाहिए। इसके लिए मनुष्य को स्वतन्त्र इच्छा (Free Will) प्राप्त है। ध्यान द्वारा अपने अन्दर समाए संस्कारों को निकालना बहुत जरूरी है। इसके बाद समस्याओं को ढूंढ़ते रह जाओगे? दु:ख का नामो निशान नहीं रहेगा।❑

वृद्ध, जीवन कैसे जीएं?

✍ श्री बाल कृष्ण गुप्ता (मो० 9467693002)

अपना मन मजबूत रखें। जिसका मन मजबूत है; वह जिन्दगी की बाजी जीत गया। जिसका मन कमजोर है; उसको भगवान भी खड़ा नहीं कर सकता। घर के काम और बच्चों में इन्टरफियर मत करो। उनको अपने फैसले स्वयं लेने दो। बिमारी और टैन्शन से बचो। अपनी सारी जिम्मेवारियां फैंक दो। अगर तुम ही जिन्दा नहीं रहोगे, तो ये चीजें किसके काम आयेंगी? बच्चे फिर भी आपकी जिम्मेवारी सम्भालेंगे। इन्सान सोचता है कि बच्चों की शादी, मकान बनाने और रिटायरमैन्ट के बाद सुखी हो जाऊंगा। फिर ध्यान सुमिरन करूंगा। मगर होता इससे उलट है। जिम्मेवारियां बढ़ जाती है; केवल पीड़ा ही रह जाती है और; भगवान के भजन में मुश्किल पड़ती है।

अपने पास इतना जरूर रखें कि बच्चों से मांगना ना पड़े। मांगते समय गिड़गिड़ाना पड़ता है। सारा देने के बाद, मांगना काफी मुश्किल है। सोच समझ कर खायें और सोच समझ कर बोलें। बिना मजबूरी किसी को सलाह ना दें। ईश्वर से प्रार्थना करो; जब तक जीऊं-अपने सहारे जीऊं। किसी का सहारा ना लेना पड़े।

क्यों रो रहे हो? तुम अपने साथ लाये ही क्या थे? और क्या साथ ले जा सकते हो? क्या आपके बाप दादा जमीन जायदाद, रुपये पैसे साथ ले गये? भाई भाई दिवार के लिये क्यों लड़ रहे हो? संसार में सदा कोई नहीं रहा। यह शरीर, रिश्तेदार, विद्या व दौलत—यहीं से मिले हैं। यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। इन्सान को घमण्ड नहीं करना चाहिए। समय कब ओर कैसा आ जाये? इसका किसी को पता नहीं। जिस प्रकार मेले में मां बाप का हाथ छूटने से, बच्चों को कोई खिलौना अच्छा नहीं लगता; इसी प्रकार ईश्वर का साथ छूटने पर इन्सान, संसार की किसी चीज का आनन्द नहीं ले सकता। कोई भी महात्मा यह नहीं कहता कि घर बार छोड़कर और संन्यासी कपड़े डालकर जंगल में चले जाओ। जंगल में भी रोटी, कपड़े और मकान की जरूरत पड़ेगी। दूसरे के मौहताज रहना पड़ेगा। भगवान को तो घर में बैठकर ध्यान, सत्संग द्वारा आसानी से पाया जा सकता है। सन्यास के बाद तो आप आजादी से घूम फिर भी नहीं सकते। अच्छा यही है कि घर में बैठकर ही सुमिरन करें।

जिस घर में तान्त्रिक अथवा ज्योतिषियों का आना जाना है; उस घर में सुख शान्ति नहीं मिल सकती। हवा, धूप, माता पिता, भाई बहन, अच्छी औलाद, अच्छा स्वास्थ्य और अच्छा मकान; हमें भगवान ने दिया है। हमें उसका शुक्र करना चाहिए। मगर हम करते नहीं। इनकी कीमत उनसे पूछें—जिसको भगवान ने नहीं दिया, या आकर दौलत चली गई। 99 चीजें जो हमें भगवान ने दी हैं, उसका तो हम शुक्र नहीं करते। जो एक चीज नहीं दी; उसके लिए सारी जिन्दगी रोकर गुजार देते हैं। ऐसे रोने वाले व्यक्ति को लोभी कहते हैं। लोभी चाहे कितना भी धन इकट्ठा कर ले? कंगाल का कंगाल ही रहेगा। सारी जिन्दगी रोकर गुजार ही देता है। अगर भगवान यह भी ना देता—तो क्या आप खुदखुशी कर लेते?

सुबह सैर जरूर करें। मासपेशियां सक्रिय रहती हैं। 40 साल तक व्यायाम; उसके बाद बाकी उम्र सैर करें। गर्मी में बाहर से आते ही ठण्डा पानी मत पियें और स्नान भी मत करें। सांस नाक से लें; मुंह से नहीं। सप्ताह में एक दिन नींबू पानी पर उपवास करें। खाना धीरे धीरे खायें। ❑

12.1.1918–
8.2.2008

भावातीत ध्यान; अनुभव की पूर्ण अवस्था का मार्ग

✍ महर्षि श्री महेश योगी

अपने अन्तरतम की गहराई के क्षेत्रों में ध्यान करना,

चेतना के सूक्ष्म स्तरों को क्रियाशील बनाने की युक्ति है।

हम चाहे उसे चेतना के गहरे स्तर कहें या उच्चतर स्तर; बात एक ही है।

मन के अधिकतम क्षेत्र को सक्रिय बनाना चाहिए। नहीं तो यदि मन केवल इन्द्रियों के ज्ञान तक ही सक्रिय है, केवल जीवन के सतह पर, केवल व्यक्त स्थूल सृष्टि तक ही सीमित है—तो सृष्टि के सूक्ष्म क्षेत्रों का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, क्योंकि इन्द्रियाँ एक विशेष सीमा के बाहर नहीं देख पातीं। जब पदार्थ सूक्ष्म हो जाता है-तब आँखें उसे देख नहीं पातीं। जब शब्द अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है-तो कान उसे सुन नहीं पाते। सभी इन्द्रियों की रचना ऐसी ही हुई है कि वे केवल स्थूल का ही अनुभव कर सकती हैं। इसलिए अपने सामान्य जीवन में हम सूक्ष्मतर के अनुभवों से अनभिज्ञ रहते हैं; जिनका उपयोग हम अनुभव के सूक्ष्म स्तर की गहराईयों में जाकर ही कर सकते हैं। ये अनुभव उस क्षेत्र के होंगे-जो अब तक सुषुप्त थे। यह अब तक मन रूपी समुद्र के निष्क्रिय स्तरों को सक्रिय बनाकर मन की गहराईयों की शक्ति को, मन के सतह को क्रियाशील में लाकर उसे शक्तिशाली, महान और सार्थक बनाता है। केवल मन के उस छोटे से भाग को अधिक शक्ति के साथ सक्रिय करना है; जिसकी क्रियाशीलता का अनुभव इन्द्रियों द्वारा हमें होता है। यह तब होगा; जब हम अपने अनुभव की क्षमता के सूक्ष्मतर स्तरों का अनुभव आरम्भ कर देंगे। जब हम सृष्टि के सूक्ष्मतम स्तरों का अनुभव करते हैं; तब अनुभव की क्षमता अधिक होती है। जब हम आत्मा के क्षेत्र भावातीत क्षेत्र में पहुँचते हैं—तब अनुभव की पूर्ण क्षमता प्राप्त हो जाती है।

यह भावातीत ध्यान; अनुभव की पूर्ण अवस्था को पहुँचाने का मार्ग है। इससे अनुभव की क्षमता अत्याधिक बढ़ जाती है। यह मनुष्य के समस्त जीवन को विचार और कर्म के क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली

बनाता है। इसमें शक्ति, सामर्थ्य, सन्तोष, शान्ति, विद्वत्ता और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति है। यह वह नुस्खा है; जो एक ही समय में सबकी पूर्ति करता है।

आवश्यकता है उसे आरम्भ करने की, उसे प्राप्त करने की। आज हम उसके सम्बन्ध में वार्ता और विचार समाप्त करके, उसका अभ्यास करें और उसका आनन्द लें। इस पर भाषण बहुत सुनें होंगे, आगे भी बहुत सुनेंगे। हम चाहते हैं: सभी इसका आनन्द लें। इसके लिए सवेरे-शाम कुछ मिनट ध्यान का अभ्यास दैनिक कार्यक्रम में सम्मिलित कर—ध्यान की युक्ति सीख लें, इतना ही पर्याप्त है। ❑

ध्यान द्वारा सर्वांगीण विकास

✍ डॉ० त्रिभुवन भारद्वाज (094681-57335)

आराम की अवस्था में आन्तरिक सुख का अनुभव करना ही ध्यान है।

ध्यान में मनुष्य अपने अहं को भूलकर आनन्द का अनुभव करता है।

ध्यान के अन्तर्गत मनुष्य पूर्ण रूप से आराम की स्थिति में होता है। जिससे उसके शारीरिक कष्टों का निदान होता है। शारीरिक ऊर्जा जागृत होकर बौद्धिक ऊर्जा का निर्माण करती है। ध्यान में पूर्ण रूप से डूब जाने पर हमारे मन में एक विशेष प्रकार की शक्ति का समावेश होता है। जिससे हम मानसिक रूप से सांसारिक समस्याओं का डटकर मुकाबला कर सकते हैं।

ध्यान हमारे शरीर को बीमारियों से मुक्त कराने में अत्यन्त सहायक है। ध्यान हमारे शरीर के लिए रामबाण दवा है। ध्यान से बौद्धिक चिन्ताओं का निदान होता है। मनुष्य स्वस्थ होता है और स्वस्थ मनुष्य ही असली आनन्द को अनुभव कर सकता है। जिस प्रकार किसी पेड़ की जड़ (मूल) को सींचकर माली पूरे पेड़ को हरा भरा कर देता है। उसी प्रकार मनुष्य ध्यान रूपी जल से मन रूपी जड़ को सींचकर पूरे जीवन को हरा भरा कर सकता है।

इस प्रकार ध्यान द्वारा मनुष्य के जीवन में चहुंमुखी विकास स्वयं हो जाता है।

ब्रह्म तत्व का सागर

✍ श्री गंगाधर बंसल (09416041346)

सागर का अपना एक आकार है।

हर सागर में एक ऊपरी सतह है, और दूसरा सबसे नीचे धरातल है। बिना लहरों के सागर नहीं होता। ब्रह्मतत्व के सागर में ब्रह्मतत्व की लहरें होंगी; जो तल पर शान्त होंगी और सतह की ओर तीव्र होती चली जाएंगी। दर्शनशास्त्र हमें दर्शाता है कि ब्रह्मतत्व में तीन गुण हैं - सत्, चित् और आनन्द

1. गुण ''सत्'' (Being) का अर्थ है; कि वो है। अर्थात् उसका अस्तित्व है। अत: जिसमें ब्रह्मतत्व पिरो जाएगा; उसका अस्तित्व हो जायेगा।

2. गुण 'चित्त' (Consciousness) में ज्ञान है।

3. आनन्द (Bliss)—ब्रह्मसुख का अनुभव है।

स्वयं ब्रह्म; जो कि अनन्त है, ब्रह्म तत्व के सागर पर अनन्त जड़ों के रूप में प्रकट हो गया। इन जड़ों का कोई अस्तित्व नहीं था। अर्थात् ये जड़ें अचेतन थीं। सतह पर प्रकट होने से, ब्रह्मतत्व के सागर की चेतना का सम्पर्क; इन अनन्त अचेतन जड़ों में हो गया। इसे दर्शनशास्त्र ने ''चेतना का अनन्त अचेतन जड़ों से विवाह'', दर्शाया है। इस तरह अनन्त अचेतन जड़ें; चेतन अस्तित्व में प्रकट हो गयीं। जिस जड़ से जीव उत्पन्न हुआ- उस जड़ का नाम ''मन'' पड़ गया।

शेष अनन्त अचेतन के माध्यम से अनन्त निर्जीव, बड़ी बड़ी शक्तियां, गुण और आकार उत्पन्न हुए। इस तरह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। जीव ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर सके-इसके लिए हर जीव को शरीर (Vehicle) मिला। इन शरीरों में दस इन्द्रियां स्थापित हुई। किसी भी इन्द्रिय ने मन को कभी महसूस नहीं किया।

मन अपने को महसूस करता है - यही प्रमाणित करता है, कि मन स्वयं इन्द्रिय जगत में नहीं आता। केवल इन्द्रियों की सहायता से इन्द्रिय जगत में आता है।

जैसे आज के समय में, हर मनुष्य मात्र टी.वी. के चैनल के माध्यम से सारे संसार

में भ्रमण कर सकता है। इसी प्रकार से मन पिण्ड में रहकर; इन्द्रियजगत के ब्रह्माण्ड का अनुभव कर सकता है। ऊपर हमने देखा कि पिण्ड में दो संसार हैं ; 1. एक संसार वह है- जो ''मैं'' का संसार कहलाता है। अनन्त के माध्यम से जो भी प्राप्त हुआ, वो अनन्त है।

ब्रह्म एक है, अखण्ड है, अनन्त है।

ब्रह्माण्ड का फैलाव भी अनन्त है। वह अनन्त प्रकार के जीव, निर्जीव और ऐसी कई शक्तियों से भरा है। इस तरह हम समझ सकते हैं कि यह बदलने वाली दुनिया, हर क्षण बदलती है।

यह संसार एक ब्रह्म के कारण है; और चेतन-अचेतन के विवाह से उत्पन्न हुआ है। अतः अचेतन में चेतन के गुण, चेतन पिरोने से उभर गये। सम्भावनाएं मात्र दो होंगी। या तो चेतना बढ़ती जाएगी। या कम होती चली जाएगी।

संभावनायें मात्र दो होने के कारण, इस संसार का नाम ''द्वैत जगत'', पड़ा।

जिस जीव में चेतना बढ़ती ही चली जाये; वो जीव ब्रह्म स्वरूप होने की ओर अग्रसर होने लगेगा। अर्थात् उसमें अखण्ड ज्ञान, अखण्ड शक्ति, अखण्ड आनन्द और अखण्ड प्रेम उभरने लगेगा। इसे जीवात्मा का उत्थान; समाज कहने लगा।

इसके विपरीत जिस जीव में चेतना घटती चली गई—ज्ञान, शक्ति, आनन्द, स्वास्थ्य और प्रेम भी घटता चला जायेगा। ऐसी चेतनाओं को समाज ने उन चेतनाओं के माध्यम से जाना, जिनका पतन होने लगा।

2. दूसरा विचारों का संसार है। जिसे 'मैं' अनुभव नहीं कर सकता। वह संसार ही ब्रह्म है, निर्गुण है, निराकार है, प्रकट होने की सबसे बड़ी शक्ति है; और अनन्त जड़ों के विवाह के माध्यम से ब्रह्माण्ड प्रकट करने वाला है। ❑

जो स्वस्थ है, वही शक्तिशाली

—प्रस्तुति : श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

जिस प्रकार रोशनी की कमी को ही अंधेरा कहते हैं, उसी प्रकार बुद्धि में जीवात्मा के प्रकाश की कमी को ही अहं कहते हैं:

क्रियाओं के क्षेत्र में मन, बुद्धि के ज़्यादा समीप है। इतनी निकटता शरीर से भी

नहीं है। इसीलिए बुद्धि में रोशनी की कमी का प्रभाव मन पर अवश्य पड़ता है। बुद्धि का प्रभाव उसी मन पर पड़ना सम्भव है; जिस मन में संस्कारों का घनापन ज़्यादा है और भगवान की रोशनी कम है।

ज्यों ज्यों मन अपने (स्वः) में स्थित होने लगता है, या यह कहें कि ईश्वर या आनन्द में स्थित होने लगता है- त्यों त्यों मन पर किसी भी कर्म की गहरी छाप पड़ने की सम्भावना कम होती जाती है। साथ ही साथ बुद्धि में रोशनी बढ़ती जाती है। दूसरे शब्दों में विवेक, जागृत होने लग जाता है। इस तरह से यह देखना कितना आसान है कि मन में आनन्द है - तब बुद्धि में भी रोशनी है।

जब बुद्धि में रोशनी की कमी है, तो उसका अर्थ है कि मन में आनन्द की कमी है। मन और बुद्धि में आनन्द और रोशनी साथ साथ ही बढ़ते और घटते हैं। यह सत्य हमें बुद्धि और मन की निकटता को दर्शाता है। जो स्वस्थ है, वह शक्तिशाली है। जो बीमार है, केवल वही कमज़ोर है। जो अपने (स्वः) में स्थित है; वही मन स्वस्थ है, शक्तिशाली है और ऐसे मनुष्यों में ही हरि के प्रशाद की कमी नहीं है। ऐसे व्यक्तियों के लिए ही गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है-

जो इच्छा करिहु मन मांही। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नांही।

इस तरह हम आसानी से देख सकते हैं कि जो पूर्ण रूप से स्वस्थ है, उसके अन्दर सब कुछ पाने की शक्ति है। जो पूर्ण रूप से स्वस्थ है, वही योग की अवस्था में रहते हुए क्रिया करने में समर्थ हैं। इसीलिए गीता (2.48) भी कहती है, **''योगस्थ कुरू कर्माणी''**। दूसरे शब्दों में केवल अस्वस्थ लोग ही योग की अवस्था में नहीं हैं। स्वास्थ्य की उपरोक्त व्याख्या हमें बताती है कि

शाररिक स्वास्थ्य की जड़ें तो हमेशा मन में ही रहती हैं। जो अपने मन को स्वस्थ नहीं बना सकता - वह अपने शरीर को भी जड़ से स्वस्थ नहीं कर सकता, लेकिन अध्यात्म की शिक्षा की कमी के कारण आज का समाज उपरोक्त ज्ञान से वंचित है।

इसीलिए समाज में अधिकांश लोग शारीरिक अस्वास्थ्य को द्वैत के भिन्न भिन्न रास्तों या नियमों द्वारा दूर करने में लगे हैं - कोई दवाई की मदद से, कोई व्रत

उपवास की मदद से, कोई तरह तरह के आसनों के द्वारा, कोई प्रातःकाल की ताज़ी हवा में दौड़कर और कोई मिट्टी पानी की मदद से स्वास्थ लाभ पाने की चेष्टा करता है। लेकिन मुश्किल से कुछ लोग ऐसे मिलते हैं; जो सिद्धांत में प्रयोगात्मक स्तर पर विश्वास करते हैं कि मात्र मन को स्वस्थ रखकर, अथवा अपने (स्वः) में स्थित रहने से अखण्ड स्वास्थ्य की प्राप्ति की सम्भावना है। मन को अपने में स्थित करने का एक रास्ता ध्यान का अभ्यास है- जिसके विषय में लेखक ने सम्पर्क में आने वालों को बताया है। यदि कोई किसी दूसरे रास्ते द्वारा अपने मन को स्वः (मैं) या आनन्द में स्थित करने में सफल हो सकता है, वह उस रास्ते पर चलकर अपने को स्वस्थ बना ले।

जिसे शारीरिक स्तर पर; न तो कोई पीड़ा है, न बुद्धि के स्तर पर भय या चिन्ता है और न ही मन के स्तर पर लोभ या शोक है - ऐसा व्यक्ति निश्चय ही पूर्ण रूप से स्वस्थ है :

जो इन उपलब्धियों को प्राप्त करने के रास्ते पर चल पड़ा है, वही साधक है। इस रास्ते के अलग अलग स्तरों पर पूर्ण साधक, उन स्तरों का सिद्ध भी कहलाएगा। कहने का अर्थ यह है कि जिसने भी भावातीत चेतना की अन्तिम अवस्था प्राप्त कर ली है; निश्चय ही उसका स्वास्थ्य—केवल जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति की चेतना वाली अवस्था वाले साधक से अच्छा है। इस अवस्था को एक छोटी सिद्धि कहा जा सकता है। लेकिन जो ब्रह्म की चेतना की अवस्था में पहुंच गए हैं, उनका हर स्तर का स्वास्थ्य उपरोक्त भावतीत चेतना के व्यक्ति से ज़्यादा अच्छा होगा और उसे ऊंचे स्तर का सिद्ध कह सकते हैं। इसके ऊपर ईश्वरीय चेतना; फिर अद्वैत चेतना की अवस्था है। ये काफ़ी उच्च अवस्थाएं हैं और इन उच्च स्तरों के सिद्ध पुरुष, समाज में कम मिलते हैं। जीवन के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग पर वह कहां तक चलने में सफल होगा - यह दूसरी बात है। लेकिन हर मनुष्य की अन्तिम अवस्था तक पहुंचाने में ध्यान का रास्ता अपने आप में सक्षम है। ❑

मनुष्य जीवन की यात्रा

✍ मां श्रीमती मालती

बड़े भाग्य से मनुष्य जीवन प्राप्त होता है।

इसे केवल बाहर से सजाने संवारने, खाने पीने और बच्चे पैदा करके उनको पालने

पोसने में ही गवां देना, बहुत बड़ी भूल होगी।

ऐसा नहीं है कि यह सब नहीं करना है।

करना है-किन्तु कैसे?

तुमको संसार इसलिए दिया गया है कि तुम्हारे अंदर की इच्छाएं, आसक्ति और अहंकार का नाश हो सके। माता पिता, पति पत्नी और बच्चे इसलिए दिये गये हैं कि तुम इनके अंदर स्थित परमात्मा के दर्शन करते हुए; उनकी सेवा कर सको।

परमात्मा की सेवा करने के लिए कहां जाओगे?

कहीं नहीं जाना। यह परिवार ही परमात्मा का रूप है। इसलिए; या तो तटस्थ होकर कर्तव्य पालन करो कि ये अपने नहीं हैं; अथवा भगवान के दर्शन करते हुए प्रेम से सेवा करो।

इन दोनों के अलावा अगर कहीं तुमने इनको अपना मानकर आसक्तिवश सेवा की-तो ये तुम्हें मुक्ति दिलाने में सहायक न होकर; तुम्हारे मनुष्य जीवन की यात्रा में बाधक बनेंगे और बंधन का कारण होंगे।

जीवन काल में यदि तुम उनसे अपनी सेवा का प्रतिफल चाहोगे, अर्थात् अपनी सेवा के बदले उनसे उम्मीद करोगे - तो उम्मीदें पूरी न होने पर क्रोध का जागरण होगा। तुम टूट जाओगे और दुखी बने रहोगे।

कर्म तो तुम्हें करना ही है।

तो क्यों न प्रत्येक कर्म में उस ईश्वर के प्रेम को देखो-जो संसार के प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है? वह चाहे तुम्हारा मित्र हो अथवा शत्रु। ऐसी मान्यता दृढ़ होने पर तुम इसी संसार में रहते हुए, सारे कर्मों को करते हुए संसार से मुक्त हो जाओगे।

जीते जी उस प्रभु के प्रेम का आस्वादन करोगे और मरने के बाद उसी परमात्मा की गोद में स्थान पाओगे।

यदि समय रहते सचेत न हुए-तो जीवन काल भी दुखमय होगा और मरने के बाद भी अपने संचित संस्कारों के कारण, शांति नहीं पाओगे और नाना प्रकार की योनियों में भटकते रहोगे। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-23 : सतत ध्यान ही कर सके, इतना हमें समर्थ।

दुखद कर्म फल को यही, कर सकता है व्यर्थ॥

निरन्तर ध्यान करना ही हमें बुरे कर्मों के बुरे फलों से बचा सकता है।

हमें इतनी सामर्थ्य जुटानी है कि हम हर समय ध्यानस्थ (योगस्थ) अवस्था में रह सकें (यह संभव भी है)। इसी को भ० गीता (2.48) में योगस्थ कहा गया है और योगस्थ अवस्था में कर्म करते रहने को ही आदर्श बताया गया है-

'योगस्थ कुरु कर्माणि'। मन की इस अवस्था में पिछले और इस जन्म के सभी दुखद कर्म फलों को धीरे धीरे व्यर्थ कर देने की शक्ति है।

दोहा-24 : स्वाभाविक जीवन जियें, लख चौरासी जान।

संस्कार निर्मूल हित, प्रभु का सरल विधान॥

चौरासी लाख (अनन्त) प्राणी स्वाभाविक जीवन जी कर, अपने संस्कारों को भगवान के सरल विधान द्वारा भोगते हैं। बुद्धि के अनुशासन से मुक्त स्वाभाविक जीवन जीने से, संस्कारों का निष्कासन होता है-अर्थात् दुख देने वाले पापों का क्षय होता है। भगवान की अहैतुकी कृपा से मनुष्येतर सभी प्राणी, स्वाभाविक जीवन जीते हैं और विभिन्न योनियों की विभिन्न परिस्थितियों द्वारा उनके विभिन्न प्रकार के संस्कार निकलते रहते हैं। प्राणियों के विकास हेतु, करुणासागर भगवान की यह महती दया है कि उसने संस्कारों के निकालने की इतनी सरल और श्रमरहित व्यवस्था की है।

दोहा-25 : या मानव संस्कार का, कर संचित अम्बार।

अमित योनि में भ्रमण का, करे सृजित आधार॥

अथवा संस्कारों को बहुत बढ़ा कर मनुष्य अनेक योनियों में भटकने का निर्माण करता है। मनुष्योतर प्राणियों के भाग्य का विधाता, स्वयं ब्रह्म है-

जो केवल स्वाभाविक जीवन जीने की क्षमता देकर, उनसे संस्कारों का निष्कासन उन्हें कराता और उनके विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। परन्तु मनुष्य योनि,

इतनी सौभाग्यशाली है कि यदि वह चाहे तो ध्यान और स्वाभाविक क्रिया (सुमिरन और भजन) के माध्यम से अपने अनन्त संस्कारों को इसी जीवन में निकाल कर, ब्रह्मस्वरूप हो सकता है।

परन्तु इस योनि के साथ एक और बात जुड़ी है कि यदि वह ध्यान और स्वाभाविक जीवन जीने का मार्ग न पाने से, बुद्धि के अनुशासन के अनुसार अपना जीवन बिताये-तो इससे पुराने संस्कार निकलने के स्थान पर और नये नये संस्कार बनने लगते हैं।

धीरे धीरे उनका अम्बार इतना बड़ा हो जाता है कि मानव योनि में उसके उत्थान की कोई संभावना ही नहीं रह जाती। तब करुणासागर भगवान उसके कल्याण का कार्य अपने हाथ में ले लेता है और उसे मनुष्येतर योनि में भेज कर और उससे केवल स्वाभाविक कार्य करा कर, संस्कार निकालने का कार्य शुरु कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य, यदि चाहे-तो सही साधना अपना कर, इसी जीवन में अपना सर्वोच्च विकास कर सकता है; अथवा संस्कारों को और इकट्ठा कर के अन्य योनियों में जन्म लेने की परिस्थिति पैदा कर लेता है।

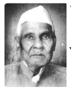

दोहा-26 : भीतर बाहर क्षेत्र दो, मन के विचरण हेतु।

ब्रह्म-जगत के बीच में, मन ही बनता सेतु॥

मन के विचरण के लिए अन्दर और बाह्य दो स्थान हैं।

भीतर ब्रह्म और बाहर संसार को जोड़ने वाला मन—पुल है।

हर मन के पास अनुभव करने के लिए एक भावों और क्रियाओं का; तथा दूसरा भावातीत (ब्रह्म) का क्षेत्र है। दोनों क्षेत्रों की अपनी अपनी शक्तियां हैं। सुखी जीवन का आधार यह है कि

मन भावातीत क्षेत्र की शक्ति को लेकर बाहर के क्षेत्र में क्रियाशील हो।

या यह कहें कि मन में आन्तरिक चेतना और बाह्य जगत की चेतना, साथ साथ (co-exist) रह सकें। इस अवस्था को पैदा करने में मन सक्षम है, इसलिये

मन को इस दोहे में बाहर और भीतर के दोनों क्षेत्रों को जोड़ने वाला पुल (सेतु) कहा है।

दोहा-27 : संस्कार जब भाव बन, ध्यान समय बिलगांय।

ब्रह्म-तत्व मन में घुले, सभी क्षेत्र हरिआय॥

ध्यान से संस्कार, विचारों के रूप में जब बाहर निकलते हैं- तब मन में ईश्वर शक्ति भर जाती है और पूरे जीवन में हरियाली छा जाती है। जब हम ध्यान करते हैं-तब हमारे अन्दर समाये हुए प्रभाव (संस्कार) बुद्धि के अनुशासन से मुक्त अनियंत्रित (क्रमहीन और ऊटपटांग के) विचारों के रूप में निकलने लगते हैं।

इन निकलते हुए संस्कारों को निकालने वाला 'ब्रह्मतत्व' है।

यह ब्रह्म तत्व, मन को अनायास प्राप्त हो जाता है। संस्कारों का घनापन कम होते जाने से भी मन को ब्रह्म तत्व (आत्मा की शक्ति) अधिकाधिक मिलने लगती है। इस प्रकार ब्रह्म की शक्ति से सम्पन्न मन-जब बाह्य जगत में क्रियाशील होता है-तब जीवन का हर पहलू ब्रह्म की कल्याणकारी योजना के अनुसार संवरने लगता है और जीवन के हर क्षेत्र में सुखप्रद हरियाली छाने लगती है।

दोहा-28 : ब्रह्म क्षेत्र में मन चरे, ब्रह्मचर्य का अर्थ।

भावी जीवन सुखद हित, करता हमें समर्थ॥

ब्रह्म के क्षेत्र में मन के विचरण को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं। इस से आगे का जीवन सुखी हो जाता है। आज के समय में अधिकतर मनुष्य अपने जीवन को बुद्धि की शक्ति द्वारा साधने का प्रयास करते हैं। परन्तु जिस युग में ब्रह्म का ज्ञान समाज से गायब नहीं हुआ था-हर व्यक्ति अपने जीवन को जीवात्मा की शक्ति द्वारा संवारता था। प्राय 20-25 वर्ष की आयु से पहले कोई भी मनुष्य अपनी बुद्धि का इतना विकास नहीं कर पाता है कि वह गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके उसके कर्तव्यों का पालन भली भांति करने की क्षमता पा सके। जब समाज को ब्रह्म की शक्ति पाने की विधि का ज्ञान था-तब भी बच्चों को 25 वर्ष की आयु तक गुरुकुल में रह कर ध्यान का अभ्यास (Meditation) कराकर उसकी आत्मिक शक्ति यथेष्ट बढ़ा दी जाती थी। उसके बाद उन्हें वैवाहिक जीवन की स्वीकृति दी जाती थी; क्योंकि तब तक वे इस योग्य हो जाते थे कि अपनी आत्म शक्ति के सहारे अपना और अपने कुटुंब का पालन पोषण भली भान्ति कर सकें। 25 वर्ष की आयु तक 'ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण' (चर) करने की साधना के कारण ही; उसे ब्रह्मचर्य (ब्रह्म + आचरण) का नाम दिया गया था।

समय बीतने के साथ साथ, ज्यों ज्यों ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा समाज से गायब होती गई- लोगों ने ब्रह्म के क्षेत्र में मन के विचरण को ब्रह्मचर्य बताने की बजाय, दाम्पत्य जीवन के सुख से दूर रहने को ब्रह्मचर्य कह दिया-यद्यपि 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण के साधना काल में ऐसा; स्वत: ही हो जाता था।

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 4 से 5 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER